International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 715-716

योगसूत्र में ईश्वर सम्बन्धी विचार

डॉ. अमित शर्मा
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत, (अनुबंध), सी. आर. किसान महाविद्यालय, जीन्द, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

आङ्ग्ल भाषा के Philosophy शब्द को ही दर्शन शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। विज्ञान की भाँति ही दर्शन के सिद्धान्तों पर भी निरन्तर अनुसन्धान किया जाता रहा है क्योंकि विज्ञान की भाँति दर्शन भी निश्चयात्मक ज्ञान पर आश्रित है। भारतीय षड्दर्शनों में योगदर्शन व्यवहारात्मक एवं क्रियात्मक होने के कारण सदा से ही लोकप्रिय रहा है। प्रायः सभी दर्शनों का एक ही लक्ष्य है त्रिविध दुःखों से निवृत्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति। योगदर्शन का आधारभूत लक्ष्य भी मानव मात्र को त्रिविध दुःखों से निवृत्त कराना ही है जिसे मुक्ति, मोक्ष कैवल्य आदि पदों से अभिहित किया गया है। सम्पूर्ण ज्ञान एवं सिद्धान्तों का वर्णन किसी न किसी रूप में वेदों में अवश्य प्राप्त होता है। वेदों में प्रयुक्त 'योग'[1] शब्द भी कदाचित योगदर्शन में वर्णित चित्त की एकाग्रता का ही बोध कराता है। किन्तु स्पष्ट रूप से योग का वर्णन वेदों में उपलब्ध नहीं होता। उपनिषदों में इसी योग के महत्व का वर्णन अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है, किन्तु यहाँ भी योग व्यवस्था का वर्णन दृष्टिगोचर नहीं होता। श्रीमद्भगवद्गीता में 'योग' शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से करते हुए मोक्ष–साधना के रूप में इसका व्यापक वर्णन किया गया है महर्षि पतंजलि द्वारा योगशास्त्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण ज्ञान को सूत्र रूप में ग्रन्थित कर एक व्यवस्थात्मक रूप प्रदान किया गया है। अतः महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र योगदर्शन का आधारभूत एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

योगसूत्र रचनाकार महर्षि पतंजलि द्वारा चित्तवृत्तिनिरोध को योग संज्ञा दी गई है।[2] चित्त का साधारण अर्थ मनुष्य का मन अथवा मस्तिष्क है। इस चित्त रूपी मन को एकाग्र करके योगसाधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए ऋषि पतंजलि द्वारा अभ्यास–वैराग्य, क्रियायोग तथा अष्टांगयोग ये तीन साधन निर्दिष्ट किए गए हैं। इन तीन साधनों में से क्रियायोग के अन्तर्गत सूत्रकार द्वारा तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर–प्रणिधान इन तीन तत्वों का वर्णन किया गया है।[3] अतः योगसूत्र में स्पष्ट रूप से 'ईश्वर' तत्त्व को स्वीकार किया गया है इसी कारण योगदर्शन को 'सेश्वरसांख्य' भी कहा जाता है। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि द्वारा इस 'ईश्वर' तत्त्व को 'पुरुष' संज्ञा दी गई है।[4] योगदर्शन के ही आचार्य व्यास द्वारा 'पुरुष' संज्ञा के विषय में स्पष्ट किया गया है कि अविद्या, राग, अस्मिता, द्वेष तथा अभिनिवेश इन पंच क्लेशों एवं सुखदुःखादि अन्य वासनाओं व विपाकों से अस्पृह्य होने के कारण ही ईश्वर एक विशेष प्रकार का पुरुष है।[5]

महर्षि पतंजलि द्वारा कहा गया है कि साम्य, समानता एवं अतिशय से रहित ऐश्वर्य होने के कारण ही वह पुरुष विशेष 'ईश्वर' कहलाता है तथा उस 'ईश्वर' में सर्वज्ञता का बीज अपनी पराकाष्ठा पर होता है।[6] योगसूत्र के भाष्यकार व्यास द्वारा स्पष्ट किया गया है कि भूत, भविष्य एवं वर्तमान में से किसी एक का अथवा सभी का अतीन्द्रय ज्ञान विशेष जो कि किसी में अधिक तथा किसी में कम होता है वही सर्वज्ञता का बीज है तथा यह सर्वज्ञत्ता रूपी बीज ही निरन्तर बढ़ता हुआ उस 'ईश्वर' नामक तत्त्व में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।[7] सूत्रकार द्वार कहा गया है कि काल से अविच्छिन्न न हो सकने के कारण यह 'ईश्वर' पूर्ववर्ती सभी गुरुओं का भी गुरु है।[8] योगसूत्र के भाष्यकर्ता व्यास द्वारा पतंजलि के ही कथन को विस्तारपूर्वक वर्णित करते हुए कहा गया है कि पूर्व के ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उपदेष्टा समय से अवच्छिन्न होते हैं अर्थात् समय के कारण सीमित हैं, किन्तु पुरुषतत्त्व में समय अवच्छेदन हेतु उपस्थित नहीं रहता। अतः यह 'ईश्वर' तत्त्व गुरुओं का भी गुरू है।[9] योगशास्त्र के अन्य आचार्य विज्ञानभिक्षु भी 'ईश्वर' को 'पुरुष' तत्त्व में ही समाहित मानते हैं।[10] विज्ञानभिक्षु द्वारा स्पष्ट भी किया गया है कि अविद्या आदि बुद्धि के धर्म होते हुए भी सांसारिक पुरुष में आरोपित होते हैं, किन्तु ईश्वर में ये अविद्या आदि आरोपित नहीं होते, इसी कारण वह विशेष 'पुरुष' है।[11] सिद्धजनों में भी अन्त समय में कैवल्य प्राप्ति पर अविद्या आदि क्लेशकर्मों का भोग नष्ट हो जाता है किन्तु फिर भी उन्हें ईश्वर संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि कैवल्य प्राप्ति से पूर्व उन सिद्धजनों में अविद्या आदि के भोग का आरोप था एवं 'ईश्वर' त्रैकालिक अथवा सदैव भोगशून्य होता है।[12]

योगसूत्र भाष्यकार व्यास का कथन है कि 'ईश्वर' सदैव मुक्त तथा ऐश्वर्यमान रहता है।[13] आचार्य विज्ञानभिक्षु का भी मानना है कि उस 'ईश्वर' संज्ञक पुरुषविशेष के ऐश्वर्य की तुलना अन्य किसी भी पुरुष के साथ नही की जा सकती। कैवल्यसिद्धजनों का ऐश्वर्य भी ईश्वरीय ऐश्वर्य के समक्ष तुच्छ है।[14] व्यास द्वारा स्पष्ट किया गया है कि 'ईश्वर' विदेह एवं प्रकृतिलयों से भिन्न है क्योंकि ईश्वर न भूतकाल में कभी किसी भी प्रकार के बन्धन में था एवं न भविष्य में कभी किसी बन्धन में होगा।[15] महर्षि पतंजलि का कथन है कि ओंकार 'ईश्वर' का अभिधायक है अर्थात् वाचक शब्द है।[16] सूत्र की व्याख्या करते हुए व्यास द्वारा स्पष्ट किया गया है कि 'ओम्' वाचक शब्द है जो कि नित्य है अर्थात् यह सम्बन्ध संकेतजन्य नहीं अपितु संकेतद्योत्य है। जैसा कि पिता एवं पुत्र का सम्बन्ध पहले से ही होता है तथा संकेत से मात्र यह ज्ञान होता है कि यह इसका पिता और यह इसका पुत्र है।[17] वाचस्पतिमिश्र का भी इस वाच्यवाचक सम्बन्ध के विषय में यही कहना है जो कि ईश्वर एवं ओंकार का परस्पर है।[18] इस 'ईश्वर' संज्ञक पुरुषविशेष को सृष्टिकर्त्ता भी कहा जाता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में प्रधान की साम्यवस्था को संक्षुब्ध करने के कारण ही यह ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है।[19] पतंजलि ऋषि के अनुसार ईश्वर एवं ओंकार को एक ही मानकर ओम् का जप तथा उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए।[20]

इस प्रकार महर्षि पतंजलि द्वारा योगसूत्र में 'ईश्वर' के स्वरूप की अवधारणा की गई है तथा 'ईश्वर' को कैवल्यप्राप्ति में सहायक एक तत्त्व विशेष के रूप में वर्णित किया गया है।

संदर्भ

1. यस्मादृते न सिद्धयति यज्ञो विपिश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति।। ऋग्वेद, 1/18/7
2. योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। योगसूत्र 1/2
3. तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः। योग सूत्र 2/1
4. क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट : पुरुषविशेष ईश्वर :। योगसूत्र 1/24
5. योगसूत्र 1/24 का व्यास भाष्य
6. योगसूत्र 1/25
7. योगसूत्र 1/25 का व्यास भाष्य
8. पूर्वोषामपि गुरु कलिनानवच्छेदात्। योगसूत्र 1/26
9. योगसूत्र 1/26 का व्यास भाष्य
10. योगवार्तिक, पृष्ठ–70
11. वही
12. योगवार्तिक, पृष्ठ–71, 72
13. सतु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति। व्यास भ्यास, पृष्ठ–66
14. नास्ति साम्यमतिशयश्च यस्मात्तादृशमित्यर्थः। योग वार्तिक, पृष्ठ–74
15. ईश्वरस्य च तत्संबन्धो न भूतो न भावी।' व्यास भाष्य, पृष्ठ–66
16. तस्य वाचकः प्रणवः। योगसूत्र 1/27
17. योगसूत्र 1/27 का व्यास भाष्य
18. तेन पूर्वसम्बंधानुसरोण संकेतः क्रियते भगवतेति। तत्त्ववैशारदी, पृष्ठ–82
19. योगवार्त्तिक पृष्ठ, 80
20. तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगसूत्र 1/28